उपासना जीवन की अनिवार्य आवश्यकता

– श्रीराम शर्मा आचार्य

उपासना जीवन की अनिवार्य आवश्यकता

हम ईश्वर से विमुख न हों

जिन्दगी को ठीक तरह से जीने के लिए एक ऐसे साथी की आवश्यकता रहती है जो पूरे रास्ते हमारे साथ रहे, प्यार करे , सलाह दे और सहायता की शक्ति तथा भावना दोनों से ही सम्पन्न हो । ऐसा साथी मिल जाने पर जिन्दगी की लम्बी मंजिल बड़ी हंसी खुशी और सुविधा के साथ पूरी हो जाती है । अकेले चलने में यह लम्बा रास्ता भारी हो जाता है और कठिन प्रतीत होता है ।

ऐसा सबसे उपयुक्त साथी जो निरंतर, मित्र, सखा, सेवक, गुरु सहायक की तरह हर घड़ी प्रस्तुत रहे और बदले में कुछ भी प्रत्युपकार न मांगे, केवल एक ईश्वर को जीवन का सहचर बना लेने से मंजिल इतनी मंगलमय हो जाती है कि धरती ही ईश्वर के स्वर्ग लोक जैसी आनन्दयुक्त प्रतीत होने लगती है । यों ईश्वर सबके साथ है और वह सबकी सहायता भी करता है पर जो उसे समझते और देखते हैं, वास्तविक लाभ उन्हें ही मिल पाता है । किसी के घर में सोना गढ़ा है और उसे वह प्रतीत न हो तो गरीबी ही अनुभव होती रहेगी , किन्तु यदि मालूम हो कि हमारे घर में इतना सोना है तो उसका भले ही उपयोग न किया जाए मन में अमीरी का गर्व और विश्वास बना रहेगा । ईश्वर को भूले रहने पर हमें अकेलापन प्रतीत होता है पर जब उसे अपने रोम रोम में समाया हुआ, अजस्र प्रेम और सहयोग बरसाता हुआ अनुभव करते हैं तो साहस हजारों गुना अधिक हो जाता है । आशा और विश्वास से हृदय हर घड़ी भरा रहता है ।

जिसने ईश्वर को भुला रखा है, अपने बलबूते पर ही सब कुछ करता है और सोचता है कि उसे जिन्दगी बहुत भारी प्रतीत होती है,

इतना वजन उठा कर चलने में उसके पैर लड़खड़ाने लगते हैं । कठिनाईयां और आपत्तियां सामने आने पर भय और आशंका सें कलेजा धक धक करने लगता है । अपने साधनों में कमी दीखने पर भविष्य अन्धकारमय प्रतीत होने लगता है, पर जिसे ईश्वर पर विश्वास है वह सदा यही अनुभव करेगा कि कोई बड़ी शक्ति मेरे साथ है । जहां अपना बल थकेगा वहां उसका बल मिलेगा । जहाँ अपने साधन कम पड़ रहें होंगे वहाँ उसके साधन उपलब्ध होगें । इस संसार में क्षण क्षण पर प्राणघातक संकट और आपत्तियों के पर्वत मौजूद हैं जो उनसे अब तक अपनी रक्षा करता आ रहा है वह आगे क्यों न करेगा ?

अब तक के जीवन पर यदि हम ध्यान दें तो ढेरों प्रसंग याद आ जावेंगे जब चारों ओर अंधेरा छाया हुआ था और यह प्रतीत होता था कि नाव अब डूबी तब डूबी, पर स्थिति बदली, विपत्ति की घटाएं हटीं और और सुरक्षा के साधन बन गए । लोग इसे आकस्मिक अवसर कहकर ईश्वर के प्रति अपनी आस्था को भुलाते रहते हैं । वास्तविकता यह है कि समय समय पर हमें दैवी सहायता मिलती है और अपने स्वल्प साधन रहते हुए भी कोई बड़ी शक्ति सहायता करने के लिए आ पहुंचती है । कृतघ्नता को हमने अपने स्वभाव में यदि सम्मिलित नहीं किया है तो अपने निज के जीवन में ही अगणित अवसर दैवी सहायता के खोज सकते हैं और यह विश्वास कर सकते हैं कि उसकी अहैतुकी कृपा निरंतर हमारे ऊपर बरसती रहे ।

अब तक जिसने समय समय पर इतनी सहायता की है जन्म लेने से पहले ही हर घड़ी गरम , मीठे और ताजे दूध से निरंतर भरे रहने वाले दो डिब्बे जिसने तैयार करके रख दिए, माता के रूप में धोबिन, डाक्टर, भंगन , नर्स, आया तथा मनमाना खर्च और दुलार करने वाली एक चौबीस घंटे की बिना वेतन की सेविका जिसने नियुक्त कर रखी है, प्रत्येक अवसर पर जिसकी सहायता मिलती रही है , वह आगे भी मिलेगी ही और अपना भविष्य उज्ज्वल बनेगा ही , यह विश्वास करने वाला व्यक्ति कभी निराश नहीं हो सकता । उसकी हिम्मत कभी टूट

नहीं सकती । आस्तिकता के आधार पर हमारी हिम्मत बढ़ती है और साहसी शूरवीरों जैसा कलेजा बना ही रहता है ।

डरता वह है जिसे ईश्वर का डर नहीं होता । जो ईश्वर से डरता है, उसके आदेशों का उल्लंघन नहीं करता, उसे इस संसार में किसी से भी डरना नहीं पड़ता । संसार की हर वस्तु से डरने और सशंकित रहने का एक ही कारण है, ईश्वर से न डरना , उसकी अवज्ञा करना , जो ऐसा नहीं करते , उसे अपना मित्र , सहायक और मार्गदर्शक मानते हैं उन्हें सबसे पहला उपहार निर्भयता का प्राप्त होता है । उन्हें फिर किसी से भी डरना नहीं पड़ता , आपत्तियाँ उसे खिलवाड़ दीखती हैं । वस्तुतः इस पुण्य उपवन संसार में डरने का कहीं कोई कारण नहीं है। कागज़ का डरावना चेहरा पहन कर छोटे बच्चों को डराने का विनोद किया जाता है वैसा ही विनोद कठिनाइयाँ दिखा कर हमारे साथ किया जाता रहता है।

पिता अपने बच्चे को तलवार घुमा कर डराना चाहे तो क्या बच्चा कभी डरता है ? ईश्वर के हाथ में इस संसार की सारी बागडोर है । दीखने वाली कठिनाइयाँ भले ही तलवार जैसी चमकें उनके मूठ तो अपने स्नेही के हाथ में हैं फिर डरने की क्या बात रही ? ईश्वर विश्वासी का सोचना इसी ढंग का होता है। हर डराने वाली घटना उसे खिलवाड़ जैसी लगती है और विषम घड़ियों में भी न तो उसे घबराहट होती है और न परेशानी ।

अपना सहायक, पिता-माता, स्वामी, सखा, भ्राता, मित्र, परिजन और धन-दौलत जिसने ईश्वर को मान रखा है उसमें किसी बड़े से अमीर से, राजाधिराज से भी अधिक आत्मविश्वास बना रहेगा । राजा रईसों के लड़के अपने पिता की जरा सी शक्ति और संपत्ति पर गर्व कर सकते हैं तो अनन्त सामर्थ्यों और असीम विभूतियों के स्वामी ईश्वर को जो अपना पिता मानेगा उसे संसार में फैला हुआ सब कुछ अपना ही अनुभव होगा । इतना अतुल वैभव जब अपना-अपने पिता का ही है तब दरिद्रता और गरीबी की बात सोचने का प्रश्न ही नहीं उठता । गरीब वे हैं जो केवल अपनी ही संपत्ति को अपनी मानते हैं । ईश्वर को अपने से

पृथक्, दूर एवं असंबद्ध मानने वाले को ही गरीबी दुःख देती है और उसे ही तृष्णा सताती है । ईश्वर के सामीप्य में असंतोष किस चीज का ? कमी किस बात की ?

गाड़ी दो पहियों से चलती है । अपनी गाड़ी में एक पहिया अपना और एक ईश्वर का लगा लें तो जो गति आती है वह एक पहिये से नहीं आ सकती । ईश्वर विहीन जीवन ऐसा ही है जैसा बिना शरीर के प्रेत - पिशाच की योनि में विचरण करने वाली आत्मा । उसे अशान्ति ही मिलती है , असन्तोष , द्वेष , क्लेश से ही ऐसी मनोभूमि जलती और संत्रस्त रहती है। परमात्मा से विमुख होकर हम पाते कुछ नहीं, खोते बहुत है। समय रहते इस भूल को सुधार लिया जाय तो ही अच्छा है।

ईश्वर उपासना आवश्यक क्यों

चील अपने शिकार की खोज के लिए आसमान की ओर उड़ान भरती है। एक निश्चित ऊंचाई पर जाकर वह गोलाई में चक्कर लगाना प्रारंभ करती है । वहां से उसे अधिक दूर दूर तक की चीजें देखने में सुगमता मिलती है । चील उस ऊंचाई से जमीन की प्रत्येक दृश्य वस्तु को बड़ी सूक्ष्मता से परखती है और जब उसे अपने शिकार का पता चल जाता है तो वह तेज झपट्टा मारकर उसे पकड़ ले जाती है ।

चील यह कार्य जमीन में या कम ऊंचाई वाले वृक्षों पर बैठकर भी कर सकती थी पर छोटी ऊँचाई से छोटे स्थान का ही अवलोकन किया जा सकता है । छोटी सी जगह में शिकार मिले या न मिले इस संदेह से बचने के लिए ही वह ऊँची उठती , नीचे देखती और आसानी से अपना शिकार खोज लेती है ।

मनुष्य की स्थिति भी ठीक ऐसी ही है । अपने आस पास की वस्तुओं को वह स्थूल आँख और छोटे विवेक से परखता है, इसलिए मनुष्य जीवन में आने का अपना लक्ष्य वह अधिक निश्चय पूर्वक नहीं खोज पाता । अपने जीवनोद्देश्य से परिचित रहे व्यक्ति के तौर तरीके रहन सहन और विचार व्यवहार भी प्रायः अस्तव्यस्त श्रेणी के होते हैं ।

जिस मनुष्य ने सही लक्ष्य का ज्ञान प्राप्त न किया हो उसका जीवन व्यर्थ ही समझना चाहिए ।

ईश्वर उपासना से मनुष्य को वह स्थिति प्राप्त होती है जहां से वह अधिक सूक्ष्मता , दूरदर्शिता एवं विवेक के साथ संसार और उसकी परिस्थितियों का निरीक्षण करता है । अपने ही खुद अहंकार से संसार की तुलना करने से मनुष्य के प्रत्येक कार्य में संकीर्णता रहती है, संकीर्णता के कारण आत्मा अपनी विशालता का, शक्ति और सामर्थ्य का आनंद नहीं लूट पाती , मनुष्य तुच्छ बना रहता है, ठीक उसी तरह जिस तरह सृष्टि के अन्य जीव जन्तु । आत्मा के सच्चे स्वरूप के ज्ञान के लिए वह ऊँचाई अपेक्षित है जो ईश्वर उपासना से मिलती है । सही लक्ष्य का ज्ञान उस स्थिति का बार बार मनन किए बिना प्राप्त नही होता है ।

जब भी कोई ईश्वर उपासना के लिए तत्पर होता है तो वह इस आधार को ही लेकर चलता है कि इस संसार की कोई नियामक शक्ति अवश्य होनी चाहिए । प्रत्येक वस्तु का कोई न कोई रचयिता होता है , तब विश्व का सृजनकर्ता भी कोई अवश्य होगा । जब इस तरह की मान्यता अन्तःकरण में उदय होती है तो तत्काल मनुष्य के सोचने के ढंग में परिवर्तन होता है । अब तक जो वस्तुएं उसे सामान्य सी प्रतीत होती थीं अब उनमें विशद ज्ञान भरा पड़ा दिखाई देने लगता है । इस तरह मनुष्य का ज्ञान विकसित होता है और विश्व के सच्चे स्वरूप को जान लेने की छटपटाहट भी । यह दोनों बातें मनुष्य के सही लक्ष्य के चुनाव के लिए आवश्यक थीं । दोनों ही ईश्वर उपासना से मिलती हैं ।

उदाहरणार्थ सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, सागर, नदियाँ, पहाड़ आदि प्राकृतिक वस्तुएं जिन्हें साधारण मनुष्य यों ही देखकर छोड़ देते हैं, ईश्वर उपासक उन्हें व्यापक रूप में देखता है । वह सोचता है कि इतना बड़ा संसार बना सके , वह पदार्थ क्या है ? यह शरीर कहाँ से आया और इसके भीतर निवास करने वाले अहंकार का स्वरूप क्या है ? उपासना स्तर जितना विकसित होता है, गूढ़ प्रश्न उतने ही अधिक मात्रा में प्रस्फुटित होते हैं । विचार करने की क्षमता भी उसी अनुपात में बढ़ती है

और यह निश्चय है, तब मनुष्य अपने जीवनोद्देश्य की समीपता की ओर भी तीव्रता से अग्रसर होने लगता है ।

साधारण व्यक्ति इस संसार के भौतिक पदार्थों में सुख खोजते हैं, ज्ञान का उनकी दृष्टि में कोई महत्व नहीं होता , पर इससे मनुष्य जीवन में विकार पैदा होते हैं , बुराईयाँ आतीं और कठिनाइयाँ बढ़ती हैं । जब तक मनुष्य भौतिक सुखों की खोज में भटकता है तब तक अपनी परेशानियाँ ही बढ़ाता है । उसे यह ज्ञान नहीं होता है कि सुख और दुख में अन्तर क्या है ?सुख समझ कर भोगे जाने वाले भोग और इन्द्रियां ही जब मनुष्य की मृत्यु का कारण बन जाती हैं, तब पता चलता है कि आत्म अज्ञानता के कारण ही यह स्थिति आई और उसका निराकरण एक ही तरीके से संभव है-उसी का नाम है , ईश्वर उपासना , जहाँ से ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है ।

ईश्वर उपासना में लगी हुई बुद्धि मनुष्य में इतना विवेक भरती है, जिससे वह संसार की क्षुद्र वासनाओं से बचने का प्रयत्न करता है । सच्चाई का अनुभव किए बिना सुख कहाँ ? अज्ञान तो मनुष्य के दुख का ही कारण बताया गया है ।

अपनी आँख से अपनी आँख को देख पाना बड़ी कठिन बात है । जब कोई आवश्यकता पड़ती है तो दर्पण खोजते हैं और उसके माध्यम से आँख की स्थिति का पता लगाते हैं । मनुष्य इसी तरह अपने भीतर बैठकर अपनी स्थिति का अन्दाजा लगा सकता । अपनी जानकारी ही पर्याप्त नहीं, अपने आस पड़ोस की वस्तुएँ, वह परिस्थितियां जिनसे मनुष्य प्रतिक्षण प्रभावित होता है, उनकी भी जानकारी आवश्यक है । इन सबका ज्ञान सबसे ऊँची जगह बैठकर ही किया जा सकता है । वह स्थिति ब्रह्म ही हो सकती है । ब्रह्म की अनुभूति के साथ साथ ही संसार के सच्चे ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है ।

ईश्वर उपासना का अर्थ है-अपने आपको विकसित करना । चील की तरह ऊपर उठकर अपने निरीक्षण क्षेत्र को चौड़ा करना, जो जितना ऊँचाई पर उठकर देखता है उसे उतना ही दूरदर्शी विवेकवान समझा

जाता है । जब सारी वस्तुओं की स्थिति का सही पता चल जाता है तो फिर कठिनाई नहीं रहती है कि किसें चुने किसे न चुने । इस प्रकार का ज्ञान पैदा हुए बिना मनुष्य अपनी जिन्दगी सुखपूर्वक नहीं बिता सकता । साधारणतया मनुष्य शरीर को ही सब कुछ मानते हैं और सारा जीवन इस शरीर की इन्द्रिय लिप्सा को शांत करने में ही बिता देते हैं । इतने से लौकिक आवश्यकता संभव है किसी हद तक पूरी हो जाती हों, किन्तु परलोक भूला हुआ सा रह जाता है । परलोक की मान्यताएं सर्वथा निराधार हैं ऐसा भी नहीं कहा जा सकता । विज्ञान सिद्ध कर रहा है कि अन्य ग्रहों में भी जीवन सम्भव है । ऐसी स्थिति में स्वर्ग और नर्क की कल्पना का भी कुछ आधार होना चाहिए । इस आधारभूत ज्ञान के लिए लौकिक जीवन ही पर्याप्त नहीं अपने भीतर के चेतन तत्व पर विचार दृष्टि डालना भी आवश्यक है । इस आन्तरिक चेतना के लिए ब्रह्म दर्पण है । ईश्वर की मान्यता में व्यक्ति अपने निजत्व को पहचानने का प्रयत्न करता है और उसके सहारे पारलौकिक जीवन का भी ज्ञान प्राप्त करता है ।

परमात्मा से तादात्म्य होना आत्मा का विशाल बनाने की प्रक्रिया है । अहंकार मिटाए बिना मनुष्य का पारलौकिक हित सम्पन्न नहीं होता । मनुष्य जब अपने आपको भुलाता है तो वह सम्पूर्ण विश्व को ही आत्मस्वरूप में देखने लगता है । सब उसे अपने ही नाना रूप दिखते हैं । जब सब अपने ही होंगे तो फिर किसी के साथ न तो छल होगा , न कपट, न क्रोध आवेगा , न प्रतिशोध की भावना । सबके सुख में सुख मिलेगा । सब प्यारे बनेंगे, सब सम्बंधी से जान पड़ेंगे ।

इस आन्तरिक विशालता में ही जीवात्मा को सच्चा आनन्द, सच्चा संतोष और तृप्ति मिलती है । यह स्थिति पाकर मनुष्य का जीवन सार्थक हो जाता है । मनुष्य आनन्द से उत्पन्न हुआ था, पर बीच में मार्ग भटक जाने के कारण वह दुःख ग्रस्त हो गया था । तब फिर से सही रास्ते पर आने और अन्त में उसी में विलीन हो जाने के लिए ईश्वर को जानना आवश्यक हुआ । परमात्मा सम्पूर्ण सृष्टि का मूल है । उसे जानने से ही

आन्तरिक प्यास बुझती, संतोष मिलता और सद्गति मिलती है । इससे अन्यत्र आत्मकल्याण का मार्ग नहीं । परमात्मा की शरणागति पाए बिना मनुष्य जीवन जैसा बहुमूल्य अवसर भी बेकार में ही बीत जाता है ।

उपासना अनिवार्य है और आवश्यक भी

इस संसार में जो कुछ शुभ है, श्रेष्ठ है , मंगलमय है-वह सब परमात्मा का ही वैभव है । गीता में अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए बताया है कि जो कुछ इस संसार में श्रेष्ठ दिखाई पड़ता है उसे भगवान की ही विभूति जानना चाहिए ।

परमात्मा के जितने ही समीप पहुंचते हैं उतनी ही श्रेष्ठताएं हमारे अन्तःकरण में उपजती तथा बढ़ती हैं । उसी अनुपात में आन्तरिक शान्ति की भी उपलब्धि होती चलती है ।

हिमालय की ठंडी हवाएं उन लोगों को अधिक शीतलता प्रदान करती हैं जो उस क्षेत्र में रहते हैं । इसी प्रकार आग की भट्टियों के समीप काम करने वालों को गर्मी अधिक अनुभव होती है । जीव ज्यों ज्यों परमात्मा के निकट पहुंचता जाता है, त्यों त्यों उसे उन विभूतियों का अपने में अनुभव होने लगता है जो उस परम प्रभु में ओत प्रोत हैं।

उपासना का अर्थ-पास बैठना । परमात्मा के पास बैठने से ही ईश्वर उपासना हो सकती है । साधारण वस्तुएं तथा प्राणी अपनी विशेषताओं की छाप दूसरों पर छोड़ते हैं तो परमात्मा के समीप बैठने वालों पर दैवी विशेषताओं का प्रभाव क्यों न पड़ेगा ?

पुष्प वाटिका में जाते ही फूलों की सुगंधि से चित्त प्रसन्न होता है । चन्दन के वृक्ष अपने समीपवर्ती वृक्षों को सुगंधित बनाते हैं । सज्जनों के सत्संग से साधारण व्यक्तियों की मनोभावनाएं सुधरती हैं, फिर परमात्मा अपनी महत्ता की छाप उन लोगों पर क्यों न छोड़ेगा जो उसकी समीपता के लिए प्रयत्नशील रहते हैं । आत्मा को परमात्मा के निकट पहुंचने पर वही बात बनती है जो गरम लोहे और ठंडे लोहे के साथ बांधने पर होती है । गरम लोहे की गर्मी ठंडे लोहे में जाने लगती है और थोड़ी देर में

ही दोनों का तापमान एक सरीखा हो जाता है । दो तालाब जब तक अलग-अलग रहते हैं तब तक उनके पानी का स्तर ऊँचा नीचा बना रहता है, पर जब बीच में नाली निकाल कर उन दोनों को आपस में संबंधित कर दिया जाता है तो अधिक भरे हुए तालाब का पानी दूसरे कम पानी वाले तालाब में चलने लगता है और यह प्रक्रिया तब तक जारी रहती है जब तक दोनों का जल स्तर समान नहीं हो जाता ।

जलाशयों का मिलना या गरम ठंडे लोहे का परस्पर मिलना जिस प्रकार एकरूपता की स्थिति उत्पन्न करता है उसी प्रकार उपासना द्वारा आत्मा और परमात्मा का मिलन होने पर जीव में दैवी गुणों की तीव्र गति से अभिवृद्धि होने लगती है ।

किसी व्यक्ति की उपासना सच्ची है या झूठी है उसकी एक ही परीक्षा है कि अन्तरात्मा में संतोष, प्रफुल्लता , आशा, विश्वास और सद्भावना का कितनी मात्रा में अवतरण हुआ । यदि वह गुण नहीं आए हैं और हीन वृत्तियाँ घेरे हुए हैं तो समझना चाहिए कि यह व्यक्ति पूजा पाठ चाहे कितना ही क्यों न करता हो, उपासना से अभी दूर ही है ।

पूजा पाठ अलग बात है, उपासना अलग । उपासना के लिए पूजा पाठ से कर्मकांड की चिन्ह पूजा करते रहने मात्र से उपासना का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता है । जीव को जीवन धारण करने के लिए शरीर की आवश्यकता होती है, पर शरीर ही जीवन नहीं है । जीव विहीन शरीर देखा तो जा सकता है, पर उसका कोई लाभ नहीं । इसी प्रकार उपासना विहीन पूजा होती तो है लेकिन उससे कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता ।

आत्मा जब परमात्मा की गोदी में बैठता है तो उसे प्रभु की सहज करुणा और अनुकम्पा का लाभ मिलता है । उसे तुरंत ही निर्भयता और निश्चिन्तता की प्राप्ति होती है । हानि, घाटा, रोग, शोक, विछोह, चिन्ता, असफलता और विरोध की विपन्न स्थितियों से भी उसे विचलित होने की आवश्यकता नहीं पड़ती । उसे इन प्रतिकूलताओं में भी अपने हित साधन का कोई विधान छिपा दिखाई पड़ता है । वस्तुतः विपन्नता हमारी त्रुटियों का शोधन करने और पुरुषार्थ बढ़ाने के लिए ही आती है ।

आलस्य और प्रमाद को, अहंकार और मत्सर को मनोभूमि से हटाना ही प्रतिकूलताओं का उद्देश्य होता है । सच्चे आस्तिक को अपने प्रिय परमेश्वर पर सच्ची आस्था होती है और वह अनुकूलताओं की तरह प्रतिकूलताओं का भी खुले हृदय से स्वागत करता है ।

माता मधुर मिष्ठान्न खिलाती है और आवश्यकता पड़ने पर कड़वी दवा भी खिलाती है । दुलार से गोदी में भी उठाए फिरती है और जब आवश्यकता समझती है तो डाक्टर के पास सुई लगाने या आपरेशन कराने के लिए भी ले जाती है । माता की प्रत्येक क्रिया बालक के कल्याण के लिए होती है । परमात्मा की ममता जीवों के प्रति माता से भी अधिक है । प्रतिकूलताएं प्रस्तुत करने में उसकी उपेक्षा या निष्ठुरता नहीं, हित कामना ही छिपी रहती है ।

अपनी कठिनाईयों को हल करने मात्र के लिए अपनी सुविधाएं बढ़ाने की लालसा मात्र से जो प्रार्थना पूजा करते हैं वे उपासना के तत्वज्ञान से अभी बहुत पीछे हैं । उन्हें उन बालकों में गिना जाना चाहिए जो प्रसाद के लालच में मन्दिर में जाया करते हैं । ऐसे बच्चे वह आनन्द कहाँ पाते हैं जो भक्ति रस में निमग्न एक भावनाशील आस्तिक को प्रभु के सम्मुख अपना हृदय खोलने और मस्तक झुकाने में आता है । प्रभु के चरणों पर अपनी अन्तरात्मा को अर्पण करने वाले भावविभोर भक्त और प्रसाद की मिठाई लेने के उद्देश्य से खड़े हुए भिखमंगे में जो अन्तर होता है वही सच्चे और झूठे उपासकों में होता है । एक का उद्देश्य परमार्थ है , दूसरे का स्वार्थ । स्वार्थी को कहीं भी सम्मान नहीं मिलता । परमात्मा की दृष्टि में भी ऐसे लोगों का क्या कुछ मूल्य होगा ?

लुहार अपनी दुकान पर लोहे के टुकड़ों से तरह तरह की चीजें बनाता रहता है । उन टुकड़ों को वह कभी गरम करने के लिए भट्टी में तपाता है कभी पानी में डाल कर ठंडा कर लेता है । इस विसंगति को देखकर कोई भोला मनुष्य असमंजस में पड़ सकता है कि लुहार ने इस दुमुही प्रक्रिया को क्यों अपना रखा है ? पर वह कारीगर जानता है कि लोहे के टुकड़े को बढ़िया उपकरण की शक्ल में परिणत करने के लिए

दोनों ही प्रकार की ठंडी और गरम प्रणालियों का प्रयुक्त होना आवश्यक है । मनुष्य के जीवन में भी सुख दुःख का धूप छांह का अपना अपना महत्व है । रात दिन की अंधेरी उजेली विसंगतियाँ ही तो कालक्षेत्र का एक सर्वांगपूर्ण विधान प्रस्तुत करती हैं । यदि मनुष्य सदा सुखी रहे तो निश्चय ही उसकी आंतरिक प्रगति रुक जाएगी । जो झटके प्रगति के लिए आवश्यक हैं उन्हें ही हम कष्ट कहते हैं । इन्हें सच्चा भक्त कड़वी औषधि की तरह ही शिरोधार्य करता है । सन्निपात का मरीज जैसे डाक्टर को गाली देता है । वैसी भूल समझदार आस्तिक ईश्वर के प्रति नहीं कर सकता है ।

विपन्नता की स्थिति में धैर्य न छोड़ना, मानसिक संतुलन नष्ट न होने देना, आशा, पुरुषार्थ को न छोड़ना आस्तिकता का प्रथम चिन्ह है, जिसे परमात्मा जैसी अनन्त सत्ता के साथ बैठने का सौभाग्य प्राप्त है वह किसी भी व्यक्ति या परिस्थिति से क्यों डरेगा ? क्यों अधीर होगा?क्यों निराशा और कातरता प्रकट करेगा ? धैर्य और साहस की अजस्र धारा उनके मन: क्षेत्र में उठती ही रहनी चाहिए ।

जो आस्तिक है उसकी आशा कभी क्षीण नहीं हो सकती । वह केवल उज्ज्वल भविष्य पर ही विश्वास रखता है । अन्धकार अनाम तत्व है । आत्म परायण व्यक्ति के चारों ओर प्रकाश, केवल प्रकाश रहना चाहिए । उसे झुंझलाने और खिन्न होने की आवश्यकता क्यों पड़ेगी ? आस्तिकता माने-आत्मविश्वास । परमात्मा पर विश्वास करने वाले को अपना भविष्य सदा उज्ज्वल एवं प्रकाशमान दिखाई देगा ।

उपासना का दूसरा प्रतिफल है-श्रेष्ठताओं में वृद्धि । चूंकि परमात्मा समस्त श्रेष्ठताओं का केन्द्र है , उसका सानिध्य आत्मा को दिन दिन उत्कृष्ट बनाता चलता है । भक्त को अपना भगवान सब में दिखाई पड़ता है । इसलिए वह हर किसी की अच्छाईयाँ ही देखता है और उनकी चर्चा एवं विचारणा करते हुए अपने आनन्द और दूसरों के सद्भाव को बढ़ाता है । निन्दा और ईर्ष्या असुरता के दो प्रधान अस्त्र हैं । इनका प्रयोग उसी पर किया जा सकता है जिनके प्रति परायेपन का, शत्रुता का भाव रहे ।

जब सब अपने हैं तो अपनों की निन्दा कैसी ? अपनों से ईर्ष्या कैसी ?

बुराई को तोड़ने के लिए नहीं अच्छाई को बढ़ाने के लिए उसके प्रयत्न होते हैं । अच्छाई को बढ़ाना ही वस्तुतः बुराई को तोड़ना है । बुराई तोड़ दी जाए और उसके स्थान पर अच्छाई की स्थापना न हो तो टूटी हुई बुराई फिर उपज आती है । आस्तिकता का दृष्टिकोण अच्छाई को बढ़ाना होता है, ताकि बुराई के लिए कोई गुंजाइश ही न रहे । वह सदा अच्छाई की ही चर्चा करेगा । प्रेम से दुष्टता को परास्त करेगा । दुष्टता करके प्रेम के अंकुरों को जला देना असज्जनों का काम है । आस्तिक असज्जन नहीं हो सकता ।

प्रेम, करुणा,आत्मीयता और सौजन्य की अजस्र धाराएं परमात्मा से प्रवाहित होती रहती हैं । प्राणिमात्र का पोषण, संरक्षण एवं संवर्धन इन्हीं विशेषताओं के द्वारा तो वह करता है । ऐसे प्रभु के समीप बैठने वाले में उपासना करने वाले में यही विशेषताएं अवतरित होती हैं । अपने भाई बहिनों के प्रति, प्राणिमात्र के प्रति अनंत करुणा और आत्मीयता की भावनाएं उपासक के अन्तःकरण में उद्‌भूत होती हैं । उनको चरितार्थ करके वह अपने जीवन को यशस्वी बनाता है और मनःक्षेत्र में धारण किए रहकर अनन्त शान्ति का अनुभव करता है।

परमात्मा की उपासना का प्रतिफल पाने के लिए प्रतीक्षा उन्हें करनी पड़ती है जो पुरुषार्थ और प्रतिभा के मूल्य पर मिलने वाली भौतिक सम्पदाओं को परमात्मा से मुफ्त में ही पाने की आशा लगाये हुए दीन-हीन भिक्षुक की तरह बैठे रहते हैं । जिन्हें प्रेम और उत्सर्ग की उच्च भावनाओं से प्रेरित होकर प्रभु के चरणों में बैठने की आकांक्षा है उन्हें अपने प्रियतम का प्रतिपादित प्रेम प्राप्त करने के लिए क्षण भर भी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती । उपासना वासना की आग को बुझाती है, तृष्णा की जलन को शान्त करती है। चिन्ता भय और घृणा की उन व्यवस्थाओं को हटाती है जो मानव-जीवन को निरन्तर अशान्त बनाये रहती हैं । उपासना और आत्मशान्ति एक ही वस्तु के दो पहलू हैं । आत्मा अपनी उद्‌गम सत्ता परमात्मा की ओर उन्मुख होगी तो निश्चय ही

उसे प्रकाश मिलेगा । परमात्मा का प्रकाश पड़ने पर आत्मा भी अपने सत् चित आनन्द स्वरूप के साथ प्रकाश मान दीखती है। ऐसे प्रकाशमान जीवन में नर से नारायण की, पुरुष से पुरुषोत्तम की आत्मा से परमात्मा की प्रत्यक्ष परिणति दृष्टिगोचर होती है। इसलिए उपासना को मानव-जीवन की सर्वोपरि बुद्धिमत्ता माना गया है।

उपासना का विश्लेषण-उपासना का स्वरूप ईश्वर का नाम जप, ध्यान, पूजन, दर्शन,स्तवन, कीर्तन आदि के विधि-विधानों के साथ सामने आता है। इस अर्चा विधान में जो समय लगता है उसमें हमारी भावनात्मक चेतना ईश्वर को स्मरण करने उसकी समीपता अनुभव करने में लगी रहती है। यदि वह भावनापूर्वक किया गया है तो भजन समाप्त होने के बाद भी दिन भर उसका अनुभव होता रहता है । एक बार नशा पी लेने पर उसकी खुमारी दिन भर बनी रहती है । इसी प्रकार एक बार या कई बार ईश्वर का स्मरण पूजन करने का उपासना विधान प्रयुक्त किया जाय तो वह समाप्त हो जाने पर भी परमात्मा के सान्निध्य के साथ उत्पन्न होने वाली उत्कृष्ट भावनाएं बनी रहती हैं और मनुष्य अपनी विचारणा एवं कार्य-पद्धति वैसी ही बनाता है जैसा कि ईश्वर के दरबार में बार-बार बैठने वाले दरबारी को अपने पद एवं स्तर के अनुरूप रखनी ही पड़ती है। राजा के दरबारी, मन्त्री, मुसाहिब अपने पद गौरव गिराने वाले ओछे काम नहीं करते , फिर ईश्वर के दरबार में उसकी समीपता में बार- बार रहने वाला व्यक्ति दुष्कर्म करने एवं दुर्बुद्धि अपनाने की भूल भी कैसे कर सकेगा ?

उपासना अपने आप भले ही घण्टे- आध घण्टे का छोटा - सा कर्मकाण्ड मात्र हो , पर यदि उसे सही आधार पर किया गया है तो उसमें सन्निहित प्रतिक्रिया से भावना स्तर भी प्रभावित होना ही चाहिए । "परमेश्वर सर्वत्र व्याप्त है, कोई गुप्त प्रकट स्थिति उसकी उपस्थिति से रहित नहीं, वह सर्वान्तर्यामी घट घट की जानता है । सत्कर्म ही उसे प्रिय हैं । धर्म मार्ग पर चलने वालों को ही वह प्यार करता है ।" इतनी मान्यता तो ईश्वर भक्त में विकसित होनी ही चाहिए । इस प्रकार की

निष्ठा जिसमें होगी वह न शरीर से दुष्कर्म करेगा और न मन में दुर्भावों को स्थान देगा । पुलिस कप्तान के सामने उपस्थित रहने पर कोई जेबकट या चोर अपराध कर बैठने का साहस नहीं कर सकता । इसी प्रकार जिसको ईश्वर के सर्वव्यापक और न्यायकारी होने का विश्वास है वह कुमार्ग पर पैर कैसे रखेगा ? आस्तिक कुकर्मी नहीं हो सकता है । जो कुकर्मी है उसकी आस्तिकता को एक विडम्बना या प्रवंचना ही कहना चाहिए ।

आत्मकल्याण का आधार-ईश्वर का दंड एवं उपहार दोनों ही असाधारण हैं । इसलिए आस्तिक को इस बात का घ्यान रखना चाहिए कि दंड से बचा जाए और उपहार प्राप्त किया जाए । यह प्रयोजन छुट पुट पूजा अर्चना, जप ध्यान से पूरा नहीं हो सकता । भावनाओं और क्रियाओं को उत्कृष्टता के ढांचे में ढालने से ही यह प्रयोजन पूरा होता है । न्यायनिष्ठ जज की तरह ईश्वर किसी के साथ पक्षपात नहीं करता । स्तवन अर्चन करके उसे उसके नियम विधान से विचलित नहीं किया जा सकता है । अपना पूजन स्मरण या गुणगान करने वाले के साथ यदि वह पक्षपात करने लगे तो उसकी न्याय व्यवस्था का कोई मूल्य न रहेगा तो फिर सृष्टि की सारी व्यवस्था ही गड़बड़ा जाएगी । सबको अनुशासन में रखने वाला परमेश्वर स्वयं भी नियम व्यवस्था में बंधा है । यदि वह उच्छृंखलता और अव्यवस्था बरतेगा तो फिर उसकी सृष्टि में पूरी तरह अंधेरखाता फैल जाएगा फिर कोई उसे न तो न्यायकारी कहेगा और न समदर्शी । तब उसे खुशामदी या रिश्वतखोर नाम से पुकारा जाने लगेगा । जो चापलूसी की स्तुति कर दे उससे प्रसन्न, जो पुरुष नेवैद्य भेंट करे इसी जाल जंजाल में उसे फंसाने का प्रयत्न करेगा , तब कठोर कर्म की जीवन साधना को , संयम सदाचार की और तप परमार्थ की कष्टसाध्य प्रक्रिया को अपनाना भला कोई क्यों पसंद करेगा ?

हमें आस्तिकता एवं उपासना का वास्तविक उद्देश्य समझना चाहिए, भगवान को हम सर्वव्यापक एवं न्यायकारी समझकर गुप्त या प्रकट रूप से अनीति अपनाने का कभी भी कहीं भी साहस न करें ।

ईश्वर के दंड से डरें । वह भक्त वत्सल ही नहीं भयानक रुद्र भी है । उसका रौद्र रुप ईश्वरीय दंड से दंडित असंख्यों रुग्ण, अशक्त, मूक, बधिर, अन्ध, अपंग कारावास एवं अस्पतालों में पड़े हुए कष्टों से कराहते हुए लोगों की दयनीय दशा को देखकर सहज ही समझा जा सकता है । यह स्वरूप भुला नहीं देना चाहिए । केवल वंशी बजाने वाले और रास रचाने वाले ईश्वर का ही ध्यान न रखें , उसका त्रिशूलधारी भी एक रूप है जो असुरता में निमग्न दुरात्माओं का नृशंस दमन मर्दन भी करता है। यह भी हमारी चेतना पर चित्रित रहना चाहिए । जहाँ वह भक्तों को प्रेमोपहार प्रदान करता है, वहाँ वह अभक्तों का, अनीति पथ के अनुगामियों का बुरी तरह उच्छेदन भी करता है । उसके दंड में जीव को ऐसी चीत्कार करनी पड़ती है कि एक क्षण के लिए उसे कड़ा आपरेशन करने वाले डाक्टर की तरह नृशंस भी कहना पड़ता है । न्यायनिष्ठ जज को जिस प्रकार अपने सगे संबंधियों प्रशंसकों, मित्रों तक को कठोर दंड देना पड़ता है, फांसी एवं कोड़े लगाने की सजा देने को विवश होना पड़ता है, वैसें ही ईश्वर को भी अपने भक्त अभक्त का प्रशंसक, निन्दक का भेद किए बिना उसके शुभ अशुभ कर्मों का दंड पुरस्कार देना होता है ।

उपासना फलवती कैसे हो ?

उपासना का मुख्य उद्देश्य है ईश्वर से सानिध्य प्राप्त करना । कोई व्यक्ति जिस समय तक पूजा, अर्चा,स्तवन, जप, ध्यान, कीर्तन आदि की उपासना विधि में निरत रहता है उतनी देर तक वह यही अनुभव करता रहता है कि परमात्मा उसके पास है अथवा वह परमात्मा के निकट है और वह यह जो कुछ कर या कह रहा है वह सब परमात्मा के लिए है । परमात्मा उसकी पूजा स्वीकार कर रहा है और उसकी विनय अथवा कीर्तन सुन रहा है । इस प्रकार उपासना के समय तक उपासक भावनात्मक रुप से परमात्मा के सानिध्य में ही रहता है ।

यों तो परमात्मा अणु अणु में परिव्याप्त है , घट घट में निवास कर

रहा है । कोई भी स्थान उससे रिक्त नहीं है , हर स्थान में वह सदा सर्वदा विद्यमान रहता है । क्या उपासक क्या उपासना सामग्री सभी में परमात्मा हर समय उपस्थित रहता है । ऐसा नहीं कि उपासना काल में ही वह उपासक के समीप अथवा उपासक उसके समीप रहता हो और अन्य समय में नहीं । वह हर समय, हर एक के पास हर स्थिति में कोई भी काम करते समय भी बना रहता है । वह सर्वव्यापक है । यदि विशेष उपासना विधि से भिन्न भी अपने हर काम को परमात्मा को सौंप दें, हर काम उसी का काम समझें और हर क्रिया को उपासना जैसी श्रद्धा एवं आस्था से करें तो मनुष्य के साधारण नित्य नैमित्तिक कार्य ईश्वर की उपासना के रूप में बदल जाएं और उसी की तरह शान्ति, संतोष तथा आनन्द के पुण्य फल प्रदान करने लगें । किन्तु यह बहुत सरल होने पर भी बहुत ऊँची और दूर की बात है । जनसाधारण का मनोविकास अभी इस स्थिति तक नहीं पहुंच सका है ।

सर्वव्यापक परमात्मा की सर्वकर्मक उपासना करते रहना दैनिक जीवन के लिए मंगलमय है साथ ही सर्वकर्मक उपासना के योग्य मनोविकास प्राप्त करने के लिए भी आवश्यक है ।

सच्ची भावना के साथ की हुई उपासना चमत्कार की तरह फलवती होती है । भावना को परमात्मा में पूर्ण रूप से , संयोजित करके कुछ देर की , की हुई उपासना जीवन पर एक स्थाई प्रभाव डालती है जो कि उत्कृष्ट विचारों, निर्विकार स्वभाव तथा सत्कर्मों के रूप में परिलक्षित होता है । उपासना करता हुआ भी जो व्यक्ति गुण, कर्म,स्वभाव एवं मन, वचन, कर्म से उत्कृष्ट नहीं बना तो यही मानना होगा कि उसने उपासना की ही नहीं , केवल वैसा करने का नाटक किया है ।

भजन पूजन अथवा जप कीर्तन करने के समय तक भी मनुष्य अपने पास अपने हृदय के पास अथवा अपनी चेतना में परमात्मा की समीपता अनुभव करता रहे तो उतनी देर की वह समीपता आनन्द एवं उत्साह के रूप में दिन भर अनुभव होती रह सकती है । उपासना के समय जितनी गहराई के साथ अपनी मानसिक भावना को परमात्मा में

संयोजित किया जाएगा यह अनुभव उतनी गहराई से जीवन में उतरता और स्थिर होता जाएगा और एक दिन ऐसा आएगा कि मनुष्य अपने में तथा अपने से बाहर परमपिता को हर समय ओत प्रोत देखने लगेगा ।

ऐसी स्थिति आ जाने पर मनुष्य का आत्मोद्धार निश्चित है । उसके गुण, कर्म, स्वभाव, परमात्मा जैसे पावन, प्रभु के सामीप्य के योग से उत्कृष्ट एवं पवित्र हो जाएंगे । सामीप्य की स्थाई एवं स्पष्ट अनुभूति होने से उसे असंदिग्ध विश्वास हो जाएगा कि 'परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है, कोई भी प्रच्छन्न अथवा प्रकट स्थान उससे रहित नहीं है । वह अन्तर्यामी और घट घट की जानने वाला है । परमात्मा की उपस्थिति का विश्वास होने पर प्रथम तो मनुष्य स्वाभाविक रूप से बुरा करेगा ही नहीं और यदि फिर भी वह धृष्टतापूर्वक ऐसा करता है तो उसे इस जघन्य अपराध का कितना और कैसे यातनापूर्वक दंड मिलेगा इसकी कल्पना नहीं की जा सकती ।

उपासना का उद्देश्य केवल इतना ही है कि उसके द्वारा परमात्मा का अधिकाधिक सानिध्य प्राप्त किया जाए जिससे कि उस परम पिता की वह कृपा पाई जा सके जो हमारी आत्मा की मुक्ति का हेतु बन सके और ऐसा तभी सम्भव हो सकता है जब हमारी उपासना निर्लोभ और निष्काम हो और हमारी जीवन नीति एवं गतिविधि उपासना के अनुरूप ही महान एवं पावन हो ।

उपासना को भी दैनिक जीवन में स्थान मिले

आस्तिकता की मान्यताओं को सुस्थिर रखने के लिए उपासना की अनिवार्य आवश्यकता है । स्थूल वस्तुएं हर समय आँखों के आगे उपस्थित रहती हैं और उनका अनुभव इन्द्रियों से बार बार होता रहता है, पर जो सूक्ष्म है, अदृश्य है उसका यदि विशेष रूप से स्मरण न किया जाए तो उसका विस्मरण हो जाना आवश्यक है । उपयोग में आने वाली सामान्य वस्तुएं भी यदि बहुत दिन तक व्यवहार में नहीं आती हैं तो हम उन्हें भूल जाते हैं । मनुष्य का स्वभाव ही भुलक्कड़ ढंग का है । यदि

ऐसा न होता तो उसके मस्तिष्क में पुरानी स्मृतियाँ इतनी अधिक भरी रहतीं कि नई बातों को सुनने समझने का स्थान ही न बचता । यह भुलक्कड़पन उन बातों पर तो बहुत ही अधिक प्रभाव डालता है जो सामने नहीं हैं, दीखती नहीं तथा इन्द्रियों द्वारा अनुभव में नहीं आती ।

ईश्वर भी ऐसी एक अदृश्य सत्ता है जो न तो इन्द्रियों से अनुभव आती है और न आँखों से दीखती हैं । ऐसी दशा में आम तौर से लोग उन्हें भूले रहते हैं । यों कहने को तो हम सभी ईश्वर को जानते हैं और मानते हैं , उसके सम्बन्ध में बहुत कुछ पढ़ते सुनते भी हैं , किन्तु वह मान्यता एक धुंधली सी छाया बनकर मस्तिष्क के किसी कोने में पड़ी रहती है । इतने मात्र से आस्तिकता का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता है । कुविचारों को रोकने और कुकर्मो पर अंकुश रखने के लिए ईश्वर की एक स्पष्ट स्मृति हमारे हृदय पटल पर अंकित रहनी चाहिए और उसका वैसा ही स्मरण रहना चाहिए जैसा हमें अपने घर में रहने वाले निकटस्थ कुटुम्बी परिजनों का रहता है । इसके बिना ईश्वर का भय एवं प्रकाश हमारे अन्तःकरण में स्थिर न रह सकेगा ।

आस्तिकता का उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है जब ईश्वर को हम सहचर के रूप में अनुभव करें । कुविचार का अवसर आते ही, कुकर्म की इच्छा जगते ही भगवान हमारे आगे धर्मोपदेशक के रूप में, न्यायाधीश के रूप में, पुलिस अधिकारी के रूप में उपस्थित हो सके तो ही यह सम्भव है कि कुमार्ग पर बढ़ते हुए हमारे कदम रुक सकें । सन्मार्ग पर चलने की जब आकांक्षा उठे और सामने प्रस्तुत कठिनाइयों के कारण मन आगे बढ़ने से हिचकिचावें तब भगवान का स्वरूप उत्साह बढ़ाने वाले, प्रेरणा देने वाले और समर्थन करने वाले के रूप में सामने आना चाहिए । हिम्मत बढ़ाने वाला कोई उत्साही व्यक्ति साथ हो तो मनुष्य बहुत कुछ कर गुजरता है , यदि सन्मार्ग के पथ पर प्रस्तुत कठिनाइयों को कुचलते हुए आगे बढ़ जाने का प्रोत्साहन भगवान की ओर से प्राप्त होवे तो मनुष्य क्या नहीं कर सकता है ?

परमात्मा का मूर्तिमान रूप हमारी आँखों के आगे विचरता रहे, वह

अदृश्य सत्ता सामने साकार रूप में प्रस्तुत, परिलक्षित दीखे तो ही यह सम्भव है कि अधर्म का परित्याग कर धर्म को दृढ़ता पूर्वक पकड़े रहने के लिए हमारी मनोभूमि खरी उतरे । अदृश्य परमात्मा को दृश्य रूप में साथी और सहचर के रूप में अनुभव करते रहने का महान कार्य 'उपासना' द्वारा ही पूरा हो सकता है । जप,ध्यान, पूजन, अर्चन आदि के विधान इसलिए बनाए गए हैं कि उस आधार पर बार बार मनुष्य परमात्मा का मनोयोग पूर्वक स्मरण करे और उस स्मृति के आधार पर प्रभु को अपने निकटवर्ती सम्बंधी, कुटुम्बी, साथी एवं सहचर के रूप में उपस्थित रहता हुआ सदा अनुभव करता रहे । पूजा से इसी मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है । बार बार स्मरण करने से दो बिछुड़े हुए विरही जन अपने प्रिय को और भी अधिक निकट हृदय में बसा हुआ अनुभव कर सकते है तो क्या परमात्मा को इस प्रकार स्मरण करकेनिकटवर्ती के रूप में अनुभव नहीं किया जा सकता है ? यदि हम अपने प्रियतम को निरंतर साथ रहने का अनुभव कर सकें तो पापों से बचे रहना और पुण्य प्रयत्नों में संलग्न रहना तो सहज ही हो जाएगा साथ ही हम निर्भय, निश्चिन्त, आशावादी और उत्साही भी रहेंगे । जिसके साथ परमात्मा जैसी शक्ति है वह किसी से क्यों डरेगा ? चिन्ता, भय, शोक, निराशा का उसके लिए क्या कारण शेष रह जाएगा ? उसे अपना भविष्य उज्ज्वल और भाग्य प्रकाशपूर्ण क्यों न दिखाई देगा ? ऐसा व्यक्ति बुरी परिस्थितियों को क्षणिक एवं अपने सुधार के लिए लगी हुई एक हल्की चपत मानकर सदा प्रफुल्लित संतुष्ट और आनंदित रह सकता है । जब परमात्मा सत्य है, शिव है, सुन्दर है तो उसके उपासक का स्वरूप वैसा ही क्यों न होगा ?

परमात्मा समस्त सत्प्रवृत्तियों का केन्द्र एवं अनंत शक्तियों का केंद्र है । जीव अन्त में विभु बनना चाहता है तो उसे अपने सामने एक आदर्श उपस्थित रखना होगा । बड़ी बड़ी इमारतें बनाने वाले इन्जीनियर पहले उसका नक्शा या माडल बनाते हैं और उसी के आधार पर अपना निमार्ण कार्य प्रारम्भ करते हें । हम अग्रगामी होना चाहते हैं, आत्मा को

परमात्मा के रूप में, मानव को महामानव, विश्व मानव के रूप में परिणत करना चाहते हैं तो आवश्यक है कि उसके लिए कोई नक्शा या मॉडल सामने हो । सत् चित आनन्द स्वरूप परमात्मा ऐसा ही आधार है जिसको निहारते हुए अपनी प्रगति का कार्यक्रम तैयार कर सकते हैं । कहते हैं कि भृंग नामक मक्खी झींगुर को पकड़कर अपने घर ले आती है । झींगुर उसकी गुञ्जार सुनता और रूप देखता रहता है, फलस्वरूप धीरे धीरे वह इस तन्मयता के आधार पर अपना झींगुर स्वरूप बदलकर भृंग के रूप में कायाकल्प कर लेता है । पुरानी धर्म पुस्तकों में कीट भृंग का यह दृष्टान्त जगह-जगह मिलता है। बात कहाँ तक सच है यह खोज का विषय है, पर आत्मा के सम्बन्ध में यह सर्वथा सत्य है। वह परमात्मा का सच्चे मन से जितना-जितना चिन्तन करता है उसी अनुपात से परमात्मा के रूप में बदलता जाता है। साधारण आत्माओं से महात्मा बनते कितनों को ही देखा गया है। जीवन का लक्ष्य आत्मोत्कर्ष है उसकी पूर्ति में परमात्मा का स्मरण, चिन्तन एवं भजन-पूजन की प्रक्रिया को अपनाया जाना आवश्यक है।

ईश्वर और जीव की निकटता एक दूसरे के रूप में परिणत होना, जिस मानसिक तत्व के आधार सम्भव हो सकता है उसका नाम है प्रेम भक्ति। मनुष्य, मनुष्य के हृदय इसी गोंद के आधार पर चिपकते और घनिष्ठ होते हैं। परमात्मा और आत्मा की एकता भी इसी तथ्य पर निर्भर है। भौतिक पदार्थ नाशवान हैं, क्षण-क्षण में बनते बिगड़ते रहते हैं। जीवों का भी यही हाल है, वे भी अपनी रुचि और परिस्थिति के अनुसार आँखें बदलते रहते हैं। इसीलिए उनसे सच्चा और चिरस्थायी प्रेम निभ नहीं सकता। सामने वाले की स्थिति का प्रभाव अपने ऊपर पड़ता ही है इसलिए प्रेम की साधना करने वाले को ऐसा आधार खोजना पड़ता है जो अपरिवर्तनशील एवं उच्च संभावनाओं से ओत-प्रोत हो। इस विश्व में परमात्मा ही एक मात्र ऐसी वस्तु है जो मानव जीवन की सर्वश्रेष्ठ रसानुभूति प्रेम भावना की अभिवृद्धि में सहायक हो सकती है। भक्ति भावना अपने आप में एक विभूति है और जिसे इसका एक कण भी प्राप्त

हो गया वह धन्य हो जाता है। इस भक्ति-साधना का अभ्यास भी उपासना की पूजा-अर्चा द्वारा ही सम्भव है।

आस्तिकता के अगणित लाभों का उठाया जाना तभी सम्भव हो सकता है जब उपासना को दैनिक जीवन में नियमित एवं निश्चित रूप से निरन्तर करते रहा जाए। केवल ईश्वर है-इतना मान लेने मात्र से उस मान्यता के द्वारा कुछ महत्वपूर्ण प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिए हम में से प्रत्येक को यह प्रयत्न करना चाहिये कि दैनिक जीवन में उपासना के लिए कोई निश्चित एवं निर्धारित विधान अवश्य रहे।

ईश्वर उपासना से महान आध्यात्मिक लाभ

जल में प्रवेश करते ही उसकी उष्णता या शीतलता का तत्काल भान होता है। आग के पास बैठने वाले को उसकी गर्मी मिलना स्वाभाविक है। किसी भी वस्तु की समीपता मनुष्य के जीवन में अपना विशिष्ट प्रभाव अवश्य छोड़ती है। बुरी वस्तु का संग बुराई पैदा करता है और भली का भलाई। संसार के सभी लोग इसलिए भले आदमियों और भली वस्तुओं का सान्निध्य प्राप्त करना चाहते हैं।

ईश्वर-उपासना का अर्थ है-ईश्वर के समीप बैठना। जल, अग्नि अथवा वायु की समीपता से जिस तरह मनुष्य तुरंत उसके गुणों का प्रभाव अनुभव करने लगता है ठीक उसी तरह से परमात्मा का सानिध्य प्राप्त होते ही जीव का आपा विस्तीर्ण होने लगता है, उसकी शक्तियाँ प्रकीर्ण होने लगती हैं। उस प्रकाश में मनुष्य न केवल अपना मार्ग दर्शन करता है अपितु अनेक औरों को भी सन्मार्ग की प्रेरणा देता है। एक ईश्वराराधक की शक्ति इसलिए बहुत बड़ी और जाज्वल्यमान समझी जाती है क्योंकि वह सर्वशक्तिमान ज्योति में अन्तर्हित होकर स्वयं भी उनका उत्तराधिकार अनुभव करने लगता है। यजुर्वेद में इस संबंध में प्रकाश डालते हुए कहा गया है-

सपर्य्यागाच्छु कमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभू-स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वैतीभ्यः समाभ्यः । -यजु. ४०/१

"जो परमात्मा देव तेजस्वी, निराकार, व्रण रहित, स्नायु जल से अपरिच्छन्न , अलौकिक, पाप रहित, कवि, मनीषी, सर्वव्याधी, सर्वशक्तिमान है, वह हमें भी इन शक्तियों से ओत प्रोत करे ।"

इस मंत्र में परमात्मा की उपासना से प्राप्त होने वाले महान आध्यात्मिक लाभों को ईश्वरीय गुणों के रूप में दिखाया गया है । यह गुण अग्नि की ऊष्णता या जल की शीतलता के ही समान है और जो व्यक्ति उनकी जितनी समीपता में पहुँचता है, इन गुणों का उसी अनुपात में उसके जीवन में आविर्भाव होता चला जाता है और अन्त में उसी में लीन होकर जीवन भाव से मुक्त हो जाता है ।

परमात्मा को "शुक्रम्" अर्थात प्रकाश रूप कहा जाता है, प्रकाश तेजस्विता, निर्दोषता एवं ज्ञान का प्रतीक है । ईश्वर उपासना से जीवात्मा का उत्थान इसी कक्षा से प्रारम्भ होता है । जब तक मनुष्य अपने जीव भाव में था तब तक वह अज्ञान ग्रस्त था, उसे संसार की वस्तुस्थिति का कुछ भी ज्ञान न था । थोड़े से क्षणिक सुखों की पूर्ति को ही उसने अपने जीवन का उद्देश्य समझा था और भोग में ही लिप्त था । इसका कारण उसका जीवन दोषयुक्त भी था । भोग शारीरिक रोग शोक पैदा करने वाले होते हैं । उनसे इन्द्रियों की दक्षता नष्ट होती है और मनुष्य वृद्धावस्था की ओर अग्रसर होता है । भोगों से जहाँ शारीरिक व्याधियाँ बढ़ती हैं वहीं मानसिक चिन्ताएं भी बढ़ती हैं । यह चिन्ताएं मनुष्य को बन्धनों से बाँधती है । पर जैसे ही परमात्मा के शुक्रम् अर्थात प्रकाश तत्व ने उसके जीवन में प्रवेश किया कि वह सांसारिक भोगों की नि:सारिता का अनुभव करने लगता है । अब उसे क्षणिक सुख निरर्थक करने लगता है और वह दैवी प्रकाश में अपना जीवन लक्ष्य निर्धारित करता है । वह देखता है कि जब मुझे केवल सुख और केवल असीम सुख की चाह है तो मैं इन छुद्र वासनाओं के पीछे क्यों भटकता

फिरूं ? ऐसे भी प्रश्न उसके जीवन में उतरते हैं, जिनसे संसार के गहन रहस्य और मनुष्य जीव की पारलौकिकता की ओर उनके विचार दौड़ने लगते हैं । यह ज्ञान ही परमात्मा का प्रकाश है । इसे ही उसकी कृपा मान सकते हैं । परमात्मा का यह प्रकाश पाए बिना मनुष्य जीवन का उद्धार भी सम्भव नहीं ।

प्रकाश जीवन के विकास की प्रारम्भिक अवस्था भी है और अन्तिम भी । आरम्भ इसलिए है कि जीव की शक्तियों का विस्तार यहीं से प्रारम्भ होता है । इस ज्ञान के उदय के साथ ही मनुष्य के अन्तःकरण से आत्मज्ञान की तीव्र आकांक्षा जाग्रत होती है और चूंकि अन्त में जीवन उसी प्रकाश में ही समाधि ले लेता है यह परम लक्ष्य की अन्तिम अवस्था भी है । इसलिए वेद शास्त्रों में ज्ञान के महत्त्व को स्वीकारा गया है और उसके बिना मनुष्य को पशुवत बताया गया है ।

परमात्मा का दूसरा गुण है–अकायम्–वह निराकार है । उसका शरीर मनुष्य जैसा नहीं , अर्थात् वह मनुष्यों जैसा कार्य नहीं कर सकता है । उपासक के अन्तःकरण में यह गुण भी शीघ्र ही चमकता है अर्थात् परमात्मा का ज्ञान तत्व या प्राण तत्व जब उसने धारण किया तो उसे सर्वप्रथम यह अनुभव हुआ कि वह अब तक जिस शरीर को ही संसार के सुख और अहंकार की पूर्ति का प्रमुख साधन समझे हुए था या यों कहें कि अब तक वह अपने शरीर को ही प्राण या जीवन समझता था अब उसे विरक्ति होने लगती है । वह अब इसे साधन या परमात्मा के मन्दिर के रूप में प्रतिष्ठित हुआ देखता है जो इन्द्रिय लिप्साएं उसे अब तक परेशान किए हुए थीं अब उसने समझा कि इन शारीरिक विकृत्तियों से उसे परेशान नहीं होना चाहिए । यह शरीर नाशवान है, पञ्च भौतिक है, कभी भी नष्ट हो सकता है, अतः इस पर स्वामित्व कर इसका सदुपयोग किया जाना चाहिए ।

इन भावनाओं के उदय के साथ ही उसे प्राण तत्त्व या शरीर में प्रतिष्ठित चेतना का अनुभव हुआ और उसने विचार किया कि अपने अदृश्य शरीर, प्राण शरीर को प्राप्त करना चाहिए । प्राण शरीर निराकार है

जो चिन्तन और विचारधारा द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है । सूक्ष्म इन्द्रियाँ ही उसे जान सकती हैं । अत: उसकी मनोवृत्तियाँ अन्तर्मुखी होने लगीं । वह कायिक हितों से परांमुख होकर अपने निराकार स्वरूप का चिंतन और उसका रहस्य जानने की इच्छा करने लगा ।

परमात्मा "अव्रणम्" है अर्थात उसे किसी प्रकार के घाव नहीं लगते । घाव मनुष्य के शरीर में ही लग सकते हैं । शास्त्रकार ने कहा है-"नैनं छिन्दति शस्त्राणि, नैनं दहति पावक: ।" अर्थात् आत्मा को शस्त्र छेदन नहीं कर सकते, आग उसे जला नहीं सकती । जब तक मनुष्य में शरीर भाव था तब तक सांसारिक ताप और शारीरिक कष्ट उसे अप्रिय लगते थे और हर क्षण इनसे छुटाकारा पाने का ही वह प्रयत्न करता था किन्तु अब उसने अनुभव किया कि शारीरिक लालसाएं अभी भी ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में उसकी बाधक हैं अत: इनका उच्छेदन करना चाहिए । यह तप के अर्थ में है । तप को शारीरिक तितीक्षा भी कहते हैं। अर्थात् जानबूझकर शरीर को कष्ट देते हैं जिससे आत्मभाव स्पष्ट होने लगे और जीवन भाव से मुक्ति मिलने लगे ।

शरीर को कष्ट देने का यह अर्थ नहीं है कि अस्त्रों से छेदा या आग से जलाया जाए वरन् तितिक्षाओं को जलाना है, जिससे लौकिक सुखों की कामना मर जाए । नियमित जीवन, स्वच्छता, सफाई, जप, प्राणायाम, उपवास, कृच्छ चन्द्रायण आदि तप कहे गए हैं । इनका उद्देश्य आत्मा को तपाना है और उसे परमात्मा से मिलने के अनुरूप शुद्ध और तेजस्वी बनाना है ।

किन्तु मनुष्य की युगयुगांतरों की दमित वासनाएं इतने शीघ्र नष्ट नहीं हो जाती हैं । शरीर की यह सफाई ठीक ऐसी है जैसे किसी गंदे नाले में जल डाल कर उसकी सफाई की जाती है । सफाई करते समय बहुत दिनों से सतह में जमी हुई गन्दगी की सड़ांध इतनी तीव्रता से फैलती है कि वह आस पास वालों का दिमाग बदबू से खराब कर देती है । आत्मोत्थान के विभिन्न साधनों द्वारा भी शरीर में वासनाओं और लौकिक कामनाओं की ऐसी सड़ांध उत्पन्न होती है जो मन को झकझोर

कर रख देती है । कुछ क्षण के लिए मन को काबू में रखना कठिन हो जाता है । इस हलचल की प्रक्रिया को ही अग्नि दीक्षा या प्राण दीक्षा के नाम से पुकारा जाता है और उस स्थिति को सभांलने के लिए किसी योग्य तथा अनुभवी दर्शक की बड़ी आवश्यकता बताई गई है । परमात्मा का "अस्नाविरम्" गुण इस बात का बोध कराता है कि उपासक परमात्मा की प्राप्ति के लिए जब संधान करे तो वह शरीर की चंचलता को हर तरीके से रोके । यह कहते हैं कि परमात्मा की ओर अचल भावना से प्रतिष्ठित हुई जीवात्मा शारीरिक चंचलता, इन्द्रियों की भड़कन या मनोविकारों से प्रभावित्त नहीं होती है ।

परमात्मा नित्य शुद्ध है वह अपने उपासक में पाप कैसे देख सकता है ? दूध में शुद्ध जल मिल सकता है, गंदा जल तो उसके स्वरूप को ही बिगाड़ देता है । अग्नि में लोहा डाला जाता है तो वह अग्नि वर्ण हो जाता है । परमात्मा अपने भक्तों के पापों का इसी प्रकार संहार करके उन्हें नष्ट करता है । यही बात उपासक की ओर से भी होती है । वह अनुभव करता है कि पाप पूर्ण जीवन बिताकर परमात्मा को पाना सम्भव नहीं, वैसे ही पुराने पापों का फल पाए बिना भी उसकी सिद्धि सम्भव नहीं । इन दोनों स्थितियों में संतुलन रखकर वह अपने पापों का धैर्यपूर्वक प्रक्षालन करता है और परमात्मा मे मिल जाने की योग्यता प्राप्त करने में संलग्न रहता है ।

विचारों से भावनाओं की शक्ति बड़ी मानी जाती है । परमात्मा मनीषी भी है और कवि भी । कविता आत्मा की सर्वव्यापकता की अभिव्यक्ति है । आत्मा जब विकसित होती है तो सारे संसार के सुख दुख में वह अपना सुख दुख अनुभव करने लगती है । यह गुण उपासक में भी उसी रूप में जाग्रत होता है । उसमें दया, प्रेम, त्याग, उदारता, व्यवहार, सहानुभूति और कष्ट, सहिष्णुता जैसी कवि भावनाएं जागती हैं । अपने स्वार्थों का परित्याग कर उसे परमार्थ में विशेष आनंद आने लगता है । संसार में जितने भी संत भक्त हुए हैं उन्होंने मनुष्य की सेवा को ही परम धर्म बताया है । ऐसा तभी सम्भव हुआ है जब

परमात्मा की उपासना के फलस्वरूप उनका कवि गुण-भावनाएँ जाग्रत हुईं । इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि वाल्मीकि, अजामिल और सदन जैसे कठोर और दुष्ट प्रकृति के व्यक्तियों ने जब ईश्वर की शरण ग्रहण की तो वे इतने सहृदय हुए कि मानवता की सेवा में ही अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया ।

विचार और भावनाओं की सर्वोच्चता में पहुँचने पर उपासक भगवान की "परिभू" शक्ति का रसास्वादन करता है । ईश्वर सर्वव्यापी है, परिभू है । संसार के कण कण में उसकी सत्ता समा रही है । पहाड़, नदियाँ, सागर, वृक्ष, वनस्पति, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र सब उसी के बनाए हुए हैं, सर्वत्र उसी का प्रकाश भर रहा है । कण कण में रज रज में वही खेल रहा है । जल, थल, नभ में ऐसा कोई स्थान नहीं है जो परमात्मा से रिक्त हो । यह विराट जगत् उसी का स्वरूप है । एक एक तिनके पर उसकी दृष्टि है । किसी का व्यवहार उससे छिपा हो यह सम्भव नहीं । उसकी आंख से कोई बचकर नहीं जा सकता है, कोई भी व्यक्ति बुरी बात करे और वह उसे न सुन ले ऐसा कभी सम्भव नहीं । उपासक परमात्मा की इस सर्वव्यापकता की अनुभूति प्राप्त कर आनंद विभोर हो जाता है । अपने आपको उसी अविनाशी तत्व में विलीन हुआ सर्वव्यापक सत्ता के रूप में देखता है स्वयं भी सर्वव्यापक हो जाता है ।

परमात्मा सर्वशक्तिमान भी है । उसकी व्यवस्था बड़ी विशाल, बड़ी अनोखी है । संसार के सब कर्मों की वह देख रेख करता है कर्म का फल भी वही देता है । रक्षा, पालन और विनाश भी वही करता है , पर वह यह सब अलिप्त निर्विकार भाव से किया करता है । संसार के कल्याण की दृष्टि से ही उसने अपनी शक्तियां विकसित की हैं और उनका लाभ भी सारे संसार को देता रहा है । ईश्वर का आंचल पकड़ने वाला भी अन्त में परमात्मा की यह महान विभूति प्राप्त कर अलिप्त , निर्विकार और जीवन मुक्त हो जाता है । मनुष्य शरीर में ही वह परमात्मा की सिद्धियों ओर शक्तियों का रसास्वादन करता हुआ अन्त में

उसी सुख स्वरूप, तेजस्वी, दुःख नाश करने वाले परमात्मा के दिव्य प्रकाश में विलीन हो जाता है।

ध्यान एवं सानिध्य-ईश्वर का ध्यान केवल किसी छवि के रूप में ही नहीं होता वरन् उसे भाव रूप से भी भजा जाता है । उच्च भावनाएं स्पष्टतः ईश्वरीय स्थिति की प्रतीक है । जितनी देर मन में सद्भावनाएं उठती रहें उतनी देर अन्तःकरण में ईश्वर की स्थिति प्रत्यक्ष ही मानी जाएगी । इसलिए अध्यात्म ग्रन्थों में स्वास्थ्य, आत्मनिर्माण एवं लोकमंगल की भावनाओं आकांक्षाओं में, योजनाओं में तन्मय रहना भी ईश्वर उपासना का एक प्रकार माना गया है। अतः भजन पूजन आदि का दैनिक नित्य कर्म हर आस्तिक व्यक्ति को करना ही चाहिए ताकि निरंतर प्रभु का स्मरण एवं सानिध्य लाभ होता रहे, पर साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ईश्वर भक्ति हमारे जीवन में उत्कृष्टता एवं आदर्शवादिता की गतिविधियों के रूप में भी परिलक्षित हो । उपासना को साधना के रूप में परिणत होना चाहिए । उपासना एक नियत समय पर नियत विधि विधान के साथ पूजा अर्चन की प्रक्रिया पूर्ण करने को कहते हैं, इसकी वास्तविकता अवास्तविकता की कसौटी यह है कि वह भावना जीवन क्रम में समाविष्ट होकर साधना बनी या नहीं । जीवन को उत्कृष्ट बनाने की साधना में संलग्न व्यक्ति ही सफल उपासक कहा जा सकता है । ईश्वर महान है, उसका सानिध्य लाभ करने वाला व्यक्ति तुच्छ, घृणित एवं निकृष्ट, स्वार्थी, विषयी रह ही नहीं सकता है । जो ईश्वर विश्वासी होते हुए भी गुण, कर्म, स्वभाव की-चरित्र एवं व्यवहार की दृष्टि से निकृष्ट है समझना चाहिए कि उसे अभी ईश्वर भक्ति का सच्चा मार्ग नहीं मिला । अग्नि की समीपता गर्मी प्रदान करती है । ईश्वर की समीपता व्यक्ति को उत्कृष्ट दृष्टिकोण अपनाने को विवश करती है । हमारी उपासना सच्ची होगी तो यह प्रभाव पग पग पर लक्षित होगा ।

प्रेम में परमेश्वर-उपनिषदकार ने "रसो वै सः" की सूक्ति में यही कहा है कि प्रेम ही परमेश्वर है । ईश्वर का भक्त प्रेमी ही हो सकता है ।

निष्ठुरता एवं स्वार्थपरता उसमें रहेगी कहाँ ? आज तो चापलूसी, खुशामद और खुदगर्जी की पूर्ति के लिए बढ़ती गई मीठी चाल मोहब्बत के नाम को बदनाम कर रही है पर सच्चाई इससे भिन्न है । प्रेम में लेने की कल्पना भी नहीं होती , उसमें तो केवल देना ही देना होता है । माता बच्चे को प्रेम करती है तो सदा देती ही रहती है , लेने की कल्पना भी नहीं करती है । पतिव्रता नारी भी अपने पति को आत्मसमर्पण करती है तो उसका प्रतिफल नहीं माँगती, यदि प्रत्यावर्तन माँगने लगे तो फिर वह पतिव्रता न कहला कर वेश्या कहलाए । ईश्वर से प्रेम करके हम ईश्वर पर कोई अहसान नहीं करते वरन् अपनी प्रेमभावना को-त्याग वृत्ति को, विस्तृत व्यापक बनाने का ही अभ्यास करते हैं। कल्याण तो केवल इसी मार्ग पर चलने से होता है।

ईश्वर दिखाई नहीं देता और न हमारी प्रेम परिचर्या का वैसा ही प्रत्युत्तर मिलता है, फिर भी हम निरन्तर उससे प्रेम करते जायें । यह साधना हमें व्यावहारिक जीवन में इस बात का अभ्यस्त बनाती है कि दूसरे लोग हमारी सेवा उदारता एवं सद्भावना के फलस्वरूप न तो प्रशंसा करें और न बदला चुकाएं तो भी हमें अपनी ओर से कोई कमी नहीं आने देनी चाहिए। हम सच्चे प्रेमी बनें । ईश्वर से मागें कुछ नहीं उसने जो दिया वही क्या कम है ? उसी का हमने क्या सदुपयोग कर लिया, जो और फरमाइशें उसके सामने रखते चले जाएँ ? उसने सुरदुर्लभ मानव शरीर देकर हमें इतना बड़ा अनुदान दिया है कि उस अनुग्रह से ही हम दबे पड़े हैं। यह शरीर और मन इतना समर्थ है कि यदि उसका ठीक उपयोग कर लिया जाय तो सांसारिक हर प्रयोजन को इन दोनों के माध्यम से पूरा किया जा सकता है । इतने समर्थ होते हुए भी छुटपुट कार्यों या वस्तुओं के लिए ईश्वर के सामने फरमाइशें रखते रहें और उनके न मिलने पर उसे दोष देते रहें तो यह बहुत ही निम्न स्तर का बचकानापन कहलायेगा । हम ओछे बहकाने नहीं वरन् ईश्वर के भक्त पुत्र के गौरवशाली स्तर को कायम रखें तो ही ठीक है।

अन्तरात्मा की सच्ची प्रार्थना

प्रार्थना मनुष्य जीवन का ध्रुव तारा है। उसे नितान्त आवश्यक नित्य कर्मों में भी सबसे आवश्यक समझा जाना चाहिये और शरीर निर्वाह के अन्य कार्यों की अपेक्षा करके भी प्रार्थना को प्रमुखता देनी चाहिए। भोजन न मिलने से तो शरीर को ही भूखा रहना पड़ेगा, पर प्रार्थना का अभाव रहने से तो आत्मा की प्रगति ही रुक जायेगी। हम शरीर नहीं आत्मा हैं इसलिए शरीर की आवश्यकताओं की उपेक्षा करके भी आत्मा की आवश्यकताओं को प्रमुखता मिलनी चाहिए। शरीर की शुद्धि के लिए साबुन जितना आवश्यक है उससे भी अधिक उपयोगिता आत्मिक शुद्धि के लिये प्रार्थना की है। उसमें न तो आलस्य करना चाहिए और न प्रमाद। प्रार्थना की उपेक्षा जीवन के सर्वोत्कृष्ट पदार्थ का तिरस्कार करने जैसी भूल है। इस भूल के लिए जितना पश्चाताप करना होता है उतना और किसी के लिए नहीं।

नियत निर्धारित समय पर शरीर, वस्त्र और स्थान शुद्धि के साथ पूजा उपकरणों की सहायता से विधिवत् पूजा की जा सके तो सर्वोत्तम है पर यदि किसी कारण वश ऐसा न बन पड़े तो प्रातः नींद खुलने से लेकर शय्या त्यागने तक का जो समय मिलता है, उसमें पूर्व- संध्या और रात को सोते समय शैया पर जाने से लेकरे निद्रामग्न होने तक का जो समय मिलता है उसमें उत्तर संध्या की जा सकती है। यह दोनों समय हर व्यक्ति के पास सुविधा के रहते ही हैं । व्यस्तता का बहाना इन क्षणों के लिए तो बनाया ही नहीं जा सकता । प्रार्थना के लिए यह समय सर्वोत्तम है । नियमित उपासना करने वालों की भाव प्रार्थना तो इस समय भी होनी चाहिए । मानसिक उपासना बिना किसी पूजा उपकरण एवं शुद्धि के भी,चारपाई पर पड़े-पड़े भी, मनोभाव, श्रद्धा, विश्वास एवं ध्यान-धारणा के आधार पर भी हो सकती है। इसे तो अनिवार्य ही मानना चाहिए । विधिवत् उपासना जिनसे बन पड़े वे उसे भी किया ही करें।

प्रार्थना में भावना का मुख्य स्थान है । भावना जितनी सच्ची,गहरी

और श्रद्धापूर्ण होगी , उतना ही उसका सत्परिणाम भी होगा । इसलिए शब्दों को रटने की चिन्ह पूजा को नहीं वरन् श्रद्धा के साथ प्रार्थनाओं की भावनाओं को अन्तःकरण में आन्दोलित करना चाहिए । दो निकटवर्ती आत्मीयजन जिस प्रकार हृदय खोलकर परस्पर वार्तालाप करते हैं उसी तरह भगवान को अपने अन्तःकरण में बैठा हुआ अनुभव करते हुए उसके सम्मुख अपने मनोभाव प्रस्तुत करने चाहिए । भगवान अपने रोम रोम में समाया हुआ है , सांसों के साथ थिरकता हुआ बाहर आता और भीतर जाता रहता है । हृदय में उसी की धड़कन और रक्त में उसी की गरमी काम कर रही है । प्राण, चेतना ओर भावना के रूप में वही तो अपनी पूरक शक्ति बना बैठा है । ऐसे अभिन्न हृदय मित्र से, स्वजन स्नेही से जी खोलकर बातें करनें में संकोच ही क्यों होना चाहिए ? उसके साथ जी खोलकर बातें करने में भय ही क्या है ? प्रार्थना यदि भावनापूर्ण है तो वह बिना पूजा साधनों के उतनी ही प्रभावशाली हो सकती है जितनी विधिविधान के साथ किए गए पूजापाठ की नियमित आराधना ।

भगवान के निकट भावना का महत्व सर्वोपरि है । विस्तृत कर्मकांड भी यदि अश्रद्धा के साथ चिन्ह पूजा की तरह भार उतारने के निमित्त किया गया हो तो उसका जो फल होगा उससे वह भाव प्रार्थना श्रेष्ठ है जो सच्चे हृदय से जी खोलकर की गई हो । नियमित उपासना का महत्व कम करने की बात किसी भी दशा में सोचनी भी नहीं चाहिए । यहां ऐसा कुछ नहीं कहा जा रहा है कि नियमित साधना बन्द करके केवल ध्यान प्रार्थना ही करता रहा जाए । यह तो घाटे की बात होगी । नियमित साधना का अपने स्थान पर अपना महत्व है। उससे एक प्रकार का योगाभ्यास होता है । हमारे घर में पूजा, आरती, भोग प्रसाद, तप, पाठ, ध्यान के कार्यक्रम चलते ही रहने चाहिए । यह भाव ध्यान जिसका उल्लेख इन पंक्तियों में किया जा रहा है ऐसा है कि उसे प्रातः सायं उठते सोते तो करना ही चाहिए , अन्य किसी अवकाश के समय में भी किया जा सकता है ।

हम प्रार्थना करें -

'हे भगवान! आप सर्वत्र समाए हुए हैं, कोई स्थान आपकी उपस्थिति से रिक्त नहीं, जड़ चेतन में आपकी ही सत्ता प्रकाशमान हो रही है । अन्य प्राणियों की भांति आप मेरे कण कण में भी समाए हुए हैं। संसार भर में जो कुछ भी हो रहा है उससे आप परिचित हैं । अन्तः करण में बैठे हुए सबकी भावनाओं को आप जानते हैं । मेरी प्रत्येक गतिविधि और भावना, विचारणा का आपको भली भांति परिचय है । इस विश्व में कुछ भी ऐसा नहीं है जो आपसे छिपा हो ।'

'आप निष्पक्ष और न्यायकारी हैं । आपको सभी मनुष्य, सभी प्राणी समान रूप से प्रिय हैं । आप सबके पिता हैं इसलिए सभी प्राणी आपको समान रूप से पुत्रवत प्रिय होने स्वाभाविक हैं । आप सब पर प्रसन्न हैं, सब पर पूर्ण प्रेम और सब पर करुणा करते हैं । संसार की सुव्यवस्था के लिए न्याय तुला का आपने जो विधान बनाया है वह सबके हित का होने से सब प्रकार उचित और उपयुक्त है । आप न्याय की रक्षा करने में तनिक भी विचलित नहीं होते, किसी के साथ पक्षपात नहीं करते, कर्मफल के अनुसार सबको दुख सुख का उचित दण्ड पुरस्कार देते हैं । इनमें आपकी करुणा, न्यायशीलता और निष्पक्षता ही संनिहित है।'

'सत्कर्म ही आपकी सबसे बड़ी पूजा है । सद्भावनाओं के पुण्य ही आपको प्रिय हैं । सद्विचारों में ही आपकी सच्ची भक्ति की प्रतीति होती है । आपके बनाए हुए नियमों को कर्तव्यनिष्ठ होकर जो दृढ़तापूर्वक पालन करता है, लोभ भय से विचलित होकर जो अपने कर्तव्य का त्याग नहीं करता, उसके सदाचार रूपी भजन को ही आप मान लेते हैं । ऐसा भजन करने वाला भक्त ही आपकी विशेष कृपा का अधिकारी बनता है ।'

दूसरों को सताने या ठगने वाला वस्तुतः अपने आपको ही सताता और ठगता है । क्योंकि आप ही सब में विद्यमान होने के कारण उस अनाचार के शिकार होते हैं । प्राणियों के प्रति सद्भाव रखना और

सद्व्यवहार करना आपकी ही अर्चना वंदना करना है । अपने पुत्रों के साथ सज्जनता का व्यवहार करते देखकर ही आप किसी को अपना भक्त मानते हैं । ठीक भी है पिता उसी से तो विशेष प्रसन्न होगा जो उसके पुत्रों के प्रति कर्तव्य से भी अधिक बढ़कर उदारता की श्रेणी का सद्व्यवहार करने का साहस करेगा । प्राणियों के साथ दुर्व्यवहार करके जिसने नीचता का परिचय देते रहने का क्रम बना लिया है वह आपको शूल चुभाने वाला किस मुँहसे यह आशा करेगा कि आप उस पर प्रसन्न होंगे ।'

'कर्तव्य पालन में चट्टान की तरह अडिग व्यक्ति आपको परम प्रिय है । प्रलोभनों में असंयम में पड़कर भी जो अपने शील को सुरक्षित रखता है उस आत्म विजेता से आप प्रसन्न रहते हैं । जो पाप के अतिरिक्त और किसी से नहीं डरता उस निर्भय को आप प्यार करते है । आपत्तियों से जो भयभीत नहीं होता, चिन्ता, निराशा और क्षोभ जिसे सताते नहीं उस सज्जन और सन्तुलित व्यक्ति पर आपकी अनुकम्पा सहज ही होती है ।'

'आप सत्य हैं, आप शिव हैं, आप सुन्दर हैं। जो आपको अन्तरात्मा में धारण करता है, उसकी प्रवृत्तियां सत्य से प्रेरित होती हैं, वह शिव कल्याणकारक कार्य करता है और उसकी समस्त चेष्टाएं सुन्दर दीखती हैं । आप दिव्य हैं आपको प्रेम करने वाला दिव्य गुणों वाला देवता बनता है । आप प्रेम हैं । आपकी किरणें जिसके भीतर प्रतिभासित होंगी, वह सबको प्रेम की, मैत्री की, आत्मीयता एवं उदारता की दृष्टि से देखेगा । दूसरों के सुख दुःख में उसे अपने ही सुख दुःख जैसी भली बुरी अनुभूति होगी ।'

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा